प्रकाशन तिथि : 26 नवम्बर 2016, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 35, अंक 5, कुल पृष्ठ 28

ISSN 2454 - 5163

# वीतराग-विज्ञान

( पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र )

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

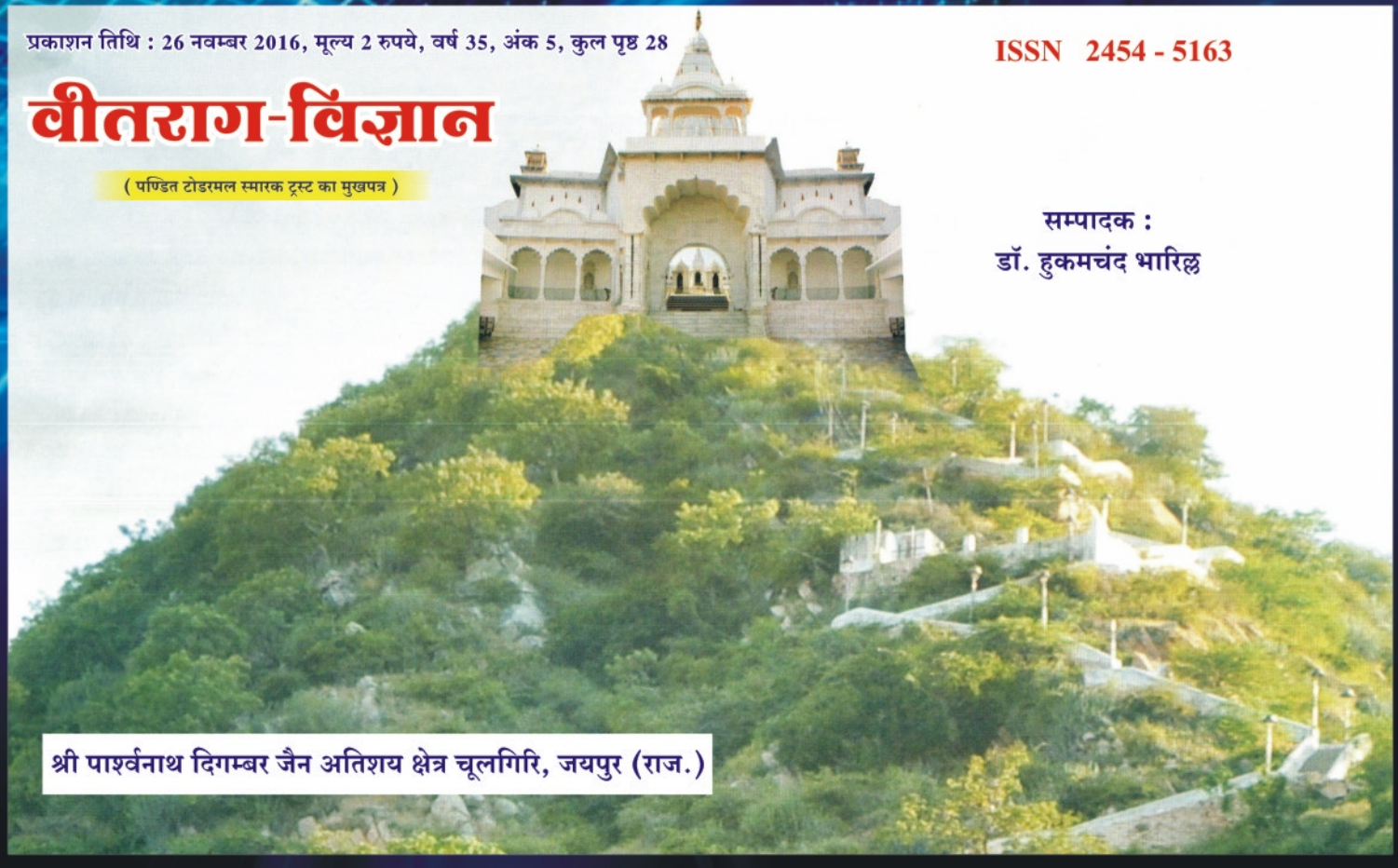

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र चूलगिरि, जयपुर (राज.)

# वीतराग-विज्ञान (400)

## हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

## जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

**सम्पादक :**

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

**सह-सम्पादक :**

डॉ. संजीवकुमार गोधा

**प्रकाशक एवं मुद्रक :**

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

**सम्पर्क-सूत्र :**

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ISSN 2454 - 5163

**शुल्क :**

| | | |
|---|---|---|
| आजीवन | : | 251 रुपये |
| वार्षिक | : | 25 रुपये |
| एक प्रति | : | 2 रुपये |

**मुद्रण संख्या :**

| | | |
|---|---|---|
| हिन्दी | : | 7200 |
| मराठी | : | 2000 |
| कन्नड़ | : | 1000 |
| **कुल** | : | **10200** |

## करण शक्ति

"शरीर धर्म का साधन है, अच्छे निमित्त धर्म के साधन हैं, शुभराग धर्म का साधन है" - ऐसा मानकर अज्ञानी तो उन्हीं के अवलम्बन में रुक जाता है। उसे यहाँ समझाते हैं कि अरे जीव ! तेरे धर्म का साधन होने की शक्ति तेरे आत्मा में ही है; इसलिये अन्तर्मुख होकर अपने आत्मा को ही साधन रूप से अंगीकार कर। इसके अतिरिक्त अन्य किन्हीं पदार्थों में या राग में तेरे धर्म का साधन होने की शक्ति नहीं है। अन्य जो भी साधन कहे जाते हों, वे सब उपचार से ही हैं; वह उपचार भी कब लागू होता है ? जब वास्तविक साधन जो आत्मस्वभाव है उसके अवलम्बन द्वारा निर्मल कार्य प्रगट करे तब निमित्त राग-व्यवहारादि को उपचार साधन कहा जाता है; किन्तु कोई सच्चे साधन को न जानकर उपचार साधन को ही सच्चा साधन मान ले तो उसे निर्मल कार्य नहीं होता और कार्य हुए बिना उसके साधन का उपचार भी कहाँ से लागू होगा ? जहाँ निश्चय साधन द्वारा कार्य हो वहीं दूसरों को (गुरु उपदेश आदि को) व्यवहार साधन कहा जाता है।

- आत्मप्रसिद्धि, पृष्ठ 522

# वीतराग-विज्ञान

**वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।**
**वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।**

वर्ष : 35 (वीर नि. संवत् - 2543) 400 अंक : 5

## ऐसा मोही क्यों न अधोगति...

ऐसा मोही क्यों न अधोगति जावै, जाको जिनवानी न सुहावै।।टेक।।
वीतराग से देव छोड़कर, कुगुरु कुदेव मनावै।
कल्पलता दयालुता तजि, हिंसा इन्द्रीयनि बावैं।।1।।
रचैं न गुरु निर्ग्रन्थ भेष, बहु-परिग्रही गुरु भावै।
पर-धन पर-तिय कौ अभिलाषे, अशन अशोधित खावै।।2।।
पर को विभव देख ह्वै विह्वल, पर-दुःख हरख लहावै।
धर्म हेतु इक दाम न खरचै, उपवन लक्ष बहावै।।3।।
ज्यों गृह में संचै बहु अघ त्यों, वन हू में उपजावै।
अम्बर त्याग कहाय दिगम्बर, बाघम्बर तन छावै।।4।।
आरम्भ तज शठ यन्त्र मन्त्र करि, जनपै पूज्य मनावै।
बाम धाम तज दासी राखे, बाहिर मढी बनावै।।5।।
नाम धराय जती तपसी मन, विषयनि में ललचावै।
'दौलत' सो अनन्त भव भटकै, औरन को भटकावै।।6।।

- कविवर पण्डित दौलतरामजी

# सम्पादकीय

## तत्त्वार्थमणिप्रदीप

( आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका )

(गतांक से आगे....)

### सिद्धों में परस्पर अन्तर

यद्यपि सिद्ध जीवों में परस्पर गति-जाति आदि किसी भी प्रकार का कोई भेद नहीं होता; इसलिए वे भेद व्यवहार से रहित हैं; तथापि उनमें क्षेत्र, काल, गति आदि की अपेक्षा कथंचित् परस्पर भेद भी है।

तत्संबंधी सूत्र इसप्रकार हैं –

**क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाह-नान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।।९।।**

***क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहन, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व के द्वारा सिद्ध जीव विभाग (भेद) करने योग्य हैं।***

प्रत्युत्पन्ननय और भूतप्रज्ञापननय की विवक्षा से बारह अनुयोगों का विवेचन किया जाता है।

**जो नय केवल वर्तमान पर्याय को ग्रहण करता है अथवा यथार्थ वस्तुस्वरूप को ग्रहण करता है, उसे प्रत्युत्पन्ननय कहते हैं।** जैसे ऋजुसूत्रनय या निश्चयनय और **जो नय अतीत पर्याय को ग्रहण करता है, उसे भूतप्रज्ञापननय कहते हैं।** जैसे व्यवहार नय।

**१. क्षेत्र –** प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा से सिद्ध क्षेत्र में, अपने आत्मप्रदेशों में अथवा जिस आकाश प्रदेशों में मुक्त होनेवाला जीव मुक्ति से पूर्व स्थित था, उन आकाशप्रदेशों से मुक्ति होती है।

**भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा पन्द्रह कर्मभूमियों में से किसी भी कर्मभूमि के मनुष्य को यदि कोई हर कर ले जाये तो समस्त मनुष्य लोक के किसी भी स्थान से उस जीव की मुक्ति हो सकती है।**

**२. काल –** प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा तो एक समय में ही मुक्ति होती है और **भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा सामान्य से तो उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनों ही कालों में मुक्ति होती है।**

विशेष से अवसर्पिणी काल के **सुखमा-दुखमा नामक तीसरे काल के अन्त में** जन्मे जीव और **दुषमा-दुषमा नामक चौथे काल में** जन्मे जीव मोक्ष जाते हैं।

**३. गति –** प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा तो सिद्ध गति में ही मुक्ति मिलती है और **भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा मनुष्य गति से ही मुक्ति मिलती है।**

**४. लिंग –** प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा तो वेद रहित अवस्था में ही मुक्ति होती है। **भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा तीनों ही भाव वेदों से मुक्ति होती है। किन्तु द्रव्य से पुल्लिंग ही होना चाहिए।** प्रत्युत्पन्ननय से निर्ग्रन्थ लिंग से ही मुक्ति मिलती है और **भूतप्रज्ञापननय से सग्रंथ लिंग से भी मुक्ति होती है।**

**५. तीर्थ –** कोई तो तीर्थंकर होकर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। कोई सामान्य केवली होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। उनमें भी कोई तो तीर्थंकर के विद्यमान रहते हुए मोक्ष जाते हैं, कोई तीर्थंकर के अभाव में भी मोक्ष जाते हैं।

**६. चारित्र –** प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा तो जिस भाव से मुक्ति होती है, उस भाव को न तो चारित्र ही कहा जा सकता है और न अचारित्र ही कहा जा सकता है।

भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा अव्यवहितरूप से तो यथाख्यात चारित्र से मोक्ष प्राप्त होता है और व्यवहितरूप से सामायिक, छेदोस्थापना, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात चारित्र से मोक्ष प्राप्त होता है और जिनके परिहारविशुद्धि चारित्र भी होता है, उनको पाँचों ही चारित्रों से मोक्ष प्राप्त होता है।

**७. प्रत्येकबुद्ध-बोधितबुद्ध –** जो अपनी शक्ति से ही ज्ञान प्राप्त करते हैं; उन्हें प्रत्येकबुद्ध कहते हैं और जो पर के उपदेश से ज्ञान प्राप्त करते हैं, उन्हें

बोधितबुद्ध कहते हैं। कोई प्रत्येकबुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं और कोई बोधितबुद्ध होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

**८. ज्ञान –** प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा तो केवलज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है और भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा किन्हीं को मतिज्ञान और श्रुतज्ञान पूर्वक केवलज्ञान होता है और किन्हीं को मति, श्रुत और अवधिज्ञानपूर्वक केवलज्ञान होता है। किन्हीं को मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्ययज्ञान पूर्वक केवलज्ञान होता है, तब मोक्ष जाते हैं।

**९. अवगाहना – आत्मप्रदेशों के फैलाव का नाम अवगाहना है।** उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ पच्चीस धनुष होती है और जघन्य अवगाहना कुछ कम साढ़े तीन हाथ होती है। मध्यम अवगाहना के बहुत से भेद हैं। भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा से इन अवगाहनाओं में से किसी एक अवगाहना से मुक्ति प्राप्त होती है और प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा इससे कुछ कम अवगाहना से मुक्ति होती है; क्योंकि मुक्त जीव की अवगाहना उसके अन्तिम शरीर से कुछ कम होती है।

**१०. अन्तर –** मुक्ति प्राप्त करनेवाले जीव लगातार भी मुक्ति प्राप्त करते हैं और बीच-बीच में अन्तर दे-देकर भी मुक्ति प्राप्त करते हैं।

**यदि जीव लगातार मोक्ष जायें तो कम से कम दो समय तक और अधिक से अधिक आठ समय तक मुक्त होते रहते हैं।** इसके बाद अन्तर पड़ जाता है।

यदि कोई भी जीव मुक्त न हो तो कम से कम एक समय और अधिक से अधिक छह माह का अन्तर पड़ता है।

**११. संख्या –** एक समय में कम से कम एक जीव मुक्त होता है और अधिक से अधिक १०८ जीव मुक्त होते हैं।

**१२. अल्पबहुत्व –** क्षेत्र आदि की अपेक्षा से जुदे-जुदे जीवों की संख्या को लेकर परस्पर में तुलना करना अल्पबहुत्व है।

प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा से सब जीव सिद्धक्षेत्र से ही मुक्ति प्राप्त करते हैं, अत: अल्पबहुत्व नहीं है।



भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा जो किसी के द्वारा हरे जाकर मुक्त हुए, ऐसे जीव थोड़े हैं; उनसे असंख्यात गुणे जन्मसिद्ध हैं।

तथा ऊर्ध्वलोक से मुक्त हुए जीव थोड़े हैं; उनसे असंख्यातगुणे जीव अधोलोक से मुक्त हुए हैं और उनसे भी असंख्यातगुणे जीव मध्यलोक से मुक्त हुए हैं।

समुद्र से मुक्त हुए जीव सबसे कम हैं; उनसे संख्यातगुणे जीव द्वीप से मुक्त हुए हैं। यह तो हुआ सामान्य कथन।

विशेष कथन की अपेक्षा लवण समुद्र से मुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं; उनसे संख्यात गुणे जीव कालोदधि समुद्र से मुक्त हुए हैं। उनसे संख्यातगुणे जम्बूद्वीप से मुक्त हुए हैं। उनसे संख्यातगुणे धातकीखण्ड से मुक्त हुए हैं। उनसे संख्यातगुणे पुष्करार्ध से मुक्त हुए हैं। यह **क्षेत्र** की अपेक्षा अल्पबहुत्व हुआ।

**काल** की अपेक्षा उत्सर्पिणी काल में मुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं। अवसर्पिणी काल में मुक्त हुए जीव उनसे अधिक हैं और बिना उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल में मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं; क्योंकि **पाँचों महाविदेहों में न उत्सर्पिणी काल है और न ही अवसर्पिणी काल है। फिर भी वहाँ से जीव सदा मुक्त होते हैं।** प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा एक समय में ही मुक्ति होती है, अत: अल्पबहुत्व नहीं है।

**गति** की अपेक्षा प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा अल्पबहुत्व नहीं है। भूतप्रज्ञापननय से तिर्यंचगति से आकर मनुष्य हो, मुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं। मनुष्य गति से आकर मनुष्य हो मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। नरक गति से आकर मनुष्य हो मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं और देवगति से आकर मनुष्य हो मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।

**वेद** की अपेक्षा विचार करते हैं कि प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा तो वेद रहित जीव ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। अत: अल्पबहुत्व नहीं होता। भूतप्रज्ञापननय की अपेक्षा नपुंसक लिंग से श्रेणी चढ़कर मुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं। स्त्रीवेद से श्रेणी चढ़कर मुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं और पुरुषवेद के उदय से श्रेणी चढ़कर मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।

**तीर्थ की अपेक्षा तीर्थंकर होकर मुक्त हुए जीव थोड़े हैं। सामान्य केवली होकर मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।**

**चारित्र** की अपेक्षा प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा तो अल्पबहुत्व नहीं है। भूतग्राहीनय की अपेक्षा भी अव्यवहित चारित्र सबके यथाख्यात चारित्र ही होता है, अत: अल्पबहुत्व नहीं है।

अन्तर सहित चारित्र की अपेक्षा पाँचों चारित्र धारण करके मुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं और चार चारित्र धारण करके मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।

**प्रत्येकबुद्ध थोड़े होते हैं।** बोधितबुद्ध उनसे संख्यातगुणे हैं। ज्ञान की अपेक्षा प्रत्युत्पन्ननय की अपेक्षा सब जीव केवलज्ञान प्राप्त करके ही मुक्त होते हैं, अत: अल्पबहुत्व नहीं है।

भूतग्राहीनय की अपेक्षा दो ज्ञान से मुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं। चार ज्ञान से मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। विशेष कथन की अपेक्षा मति, श्रुत और मन:पर्ययज्ञान प्राप्त करके मुक्त हुए जीव सबसे थोड़े हैं। मति, श्रुतज्ञान प्राप्त करके मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं। मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्ययज्ञान प्राप्त करके मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं और मति, श्रुत और अवधिज्ञान प्राप्त करके मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।

**अवगाहना** अपेक्षा से जघन्य अवगाहना से मुक्त हुए जीव थोड़े हैं। उत्कृष्ट अवगाहना से मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं और मध्यम अवगाहना से मुक्त हुए जीव उनसे संख्यातगुणे हैं।

संख्या अपेक्षा से एक समय में एक सौ आठ की संख्या में मुक्त हुए जीव थोड़े हैं, एक समय में एक सौ सात से लेकर पचास तक की संख्या में मुक्त हुए जीव उनसे अनन्तगुणे हैं। एक समय में उनचास से लेकर पच्चीस तक की संख्या में मुक्त हुए जीव असंख्यातगुणे हैं। एक समय में चौबीस से लेकर एक तक की संख्या में मुक्त हुए जीव संख्यातगुणे हैं।

इसप्रकार मुक्त हुए जीवों में वर्तमान की अपेक्षा तो कोई भेद नहीं है। जो भेद है, वह भूतपर्याय की अपेक्षा ही है।।९।।



इसप्रकार यहाँ दशवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ को समाप्त करते हुए आचार्यदेव एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है –

( दोधकवृत्त )

**अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफम्।**
**साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।।**

यदि इस शास्त्र में कोई कथन; अक्षर, मात्रा, पद, स्वर से हीन हो; व्यंजन, संधि और रेफ रह गई हो तो, साधुपुरुषों के द्वारा मुझे क्षमा कर देना चाहिए; क्योंकि शास्त्ररूपी समुद्र में कौन पुरुष विमोहित नहीं हो जाता।

तात्पर्य यह है कि शास्त्र तो एक गंभीर सागर जैसे हैं। जिसप्रकार सागर में अच्छे-अच्छे पुरुष गोता खा जाते हैं; उसीप्रकार शास्त्रसमुद्र में भी अच्छे-अच्छे पुरुषों से भी भूल हो सकती हैं।

**ध्यान रहे, आचार्यदेव अक्षर, मात्रा, पद, स्वर, व्यंजन, संधि और रेफ संबंधी भूल की संभावना व्यक्त कर रहे हैं; भाव की भूल नहीं; क्योंकि उन जैसे प्रौढ़ विद्वान संतों से भाव की भूल तो संभव ही नहीं है। यदि उन्हें ऐसा लगता है कि मुझसे भाव में भी भूल हो सकती है; तो वे लिखते ही नहीं।**

आचार्यदेव की महानता और विद्वत्ता को देखते हुए हमें भावसंबंधी भूल की कल्पना भी नहीं करना चाहिए।

इसप्रकार तत्त्वार्थसूत्र अपर नाम मोक्षशास्त्र नामक शास्त्र समाप्त हुआ। ●

## देखो, तत्त्वविचार की महिमा !

देखो, तत्त्वविचार की महिमा ! तत्त्वविचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादिक पाले, तपश्चरण आदि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं और तत्त्वविचार वाला इसके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है। **– मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 260**

छहढाला प्रवचन

# निजात्म-ध्यान की प्रेरणा

**पुण्य-पाप फल मांहि, हरख बिलखौं मत भाई।**
**यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।।**
**लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लाओ।**
**तोरि सकल जग दन्द-फन्द, निज आतम ध्याओ।।९।।**

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

**(गतांक से आगे....)**

ज्ञान की भावना भाना और पुण्य-पाप के फल में हर्ष-शोक नहीं करना। जब परवस्तु की ममता करे तब ही उसे भली-बुरी माने और हर्ष-शोक उत्पन्न हो; किन्तु परवस्तु मेरे में है ही नहीं, मैं तो ज्ञान हूँ – इसप्रकार पर से भिन्न आत्मा के स्वभाव को भावे तो उसमें हर्ष-शोक नहीं हो, जन्म-मरण का द्वन्द नहीं हो और संसार के फन्द से छूटकर आत्मशान्ति प्रकट हो।

सिद्धान्त यह है कि आत्मा का ज्ञानस्वभाव ही भला है, सुन्दर है और समस्त पुण्य-पाप का विकार बुरा है। इसके अतिरिक्त संसार में कोई वस्तु भली-बुरी नहीं है। इसप्रकार ज्ञान को ही सुन्दर-भला मानकर, पर को भला-बुरा नहीं मानना चाहिए और उसमें हर्ष-शोक भी नहीं करना चाहिए। जिसने पर को हितरूप या अहितरूप माना, उसने सारे जगत के प्रति राग-द्वेष किया अर्थात् उसके अनन्तानुबंधी राग-द्वेष हुआ। जब पर से भिन्न अपने ज्ञानस्वभाव को जाने और उसे ही भला-सुन्दर सुखरूप माने तब, उसमें सन्मुखता हो और पर में राग-द्वेष का अभिप्राय छूटकर स्वभाव प्रकट हो। अत: ज्ञानस्वरूप का निर्णय करके उसके सन्मुख होना, यही लाखों बातों का सार है और यही सुखी होने का मार्ग है।

ज्ञानी पुण्य के फल में मिली सामग्री को हितकर और पाप के फल में मिली सामग्री को अहितकर नहीं मानता। मैं उनसे भिन्न ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा हूँ –



ऐसा आत्मज्ञान ही मुझे हितकर है, अन्य कुछ भी हितकर नहीं। अज्ञान ही अहितकर था, उसका तो नाश हो गया है। अज्ञानी को भी वास्तव में परवस्तु अहितकर नहीं है, उसको भी उसका अज्ञान ही अहितकर है। द्वितीय ढाल में कहा था मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रवश जीव जन्म-मरण के दुख भोग रहा था, इसलिए इन तीनों को छोड़ दो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

रागादि तो प्रकटपने दुख है, राग अशुभ हो या शुभ हो, दोनों में दुख ही है; परन्तु अज्ञानी उनमें सुख मानकर सेवन करता है और उनके फल में सुख-दुख मानता है। दूसरी ढाल में कहा है –

**रागादि प्रगट ये दु:खदैन, तिनहीं को सेवत गिनत चैन।**

देखो यह अज्ञानी का लक्षण, भाई राग से भिन्न तेरा ज्ञान ही तुझे सुख देनेवाला है। पुण्य-पाप तो आस्रव हैं, वह तो संसार का कारण है, उसमें सुख कैसे होगा ? भेदज्ञान समान कोई सुख नहीं, भेदज्ञान के अलावा कोई मोक्ष का कारण नहीं। इसलिए हे मोक्षार्थी जीव ! सर्व प्रयत्न से ऐसे आत्मा का ज्ञान करके उसको ही ध्यावो। सकल जगत के द्वन्द-फन्द को छोड़कर अन्तर में लाख उपाय करके भी अपने आत्मा को लक्ष्य में लो, उसी का ध्यान करो, यही द्वादशांग का सार है।

''सकल जगत'' कहने पर, संसार में पुण्य के फल हों अथवा पाप के फल हों, वे सब उसमें आ गये। आत्मा का ज्ञान उन सबसे भिन्न है। सकल जगत से भिन्न शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघन स्वयं ज्योति सुखधाम – ऐसा अनुभव ही ज्ञानीदशा है। ऐसे अनुभव बिना तो सब थोथा (तोते जैसा ज्ञान) है, वह कुछ सारभूत नहीं है। सार तो सम्यग्ज्ञान है जो कि मरण के समय भी जीव को समाधि प्रदान करता है।

मरण बेला आवे, शरीर कुछ काम न करे, श्वांस भी सीधी न आवे, तथापि यह सब विषमतायें आत्मा के ध्यान में बाधक नहीं हैं। आत्मा के ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह बाह्य प्रतिकूलता के समय भी अन्दर सम्यग्ज्ञान और शान्ति रख सकता है। शरीर ठीक रहे तो ही आत्मा का ध्यान हो – ऐसा नहीं है। यदि ऐसा माना जाय तो ज्ञान की अपेक्षा शरीर का मूल्य बढ जावेगा। शरीर भले ठीक हो या न हो, भले सुलगता हो, परन्तु ज्ञान ठीक हो तो पाण्डवों और गजकुमार मुनि के समान आत्मा का ध्यान

और शान्ति हो सकती है। शरीर ध्यान में विघ्न नहीं डालता और सहायता भी नहीं करता। कोई अज्ञानी हो, पुण्य करके स्वर्ग जावे, वहाँ उस देव को असंख्यवर्ष तक सुन्दर निरोग वैक्रियिक शरीर आदि स्वर्गानुकूल संयोग होने पर भी यदि वह सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं कर पाता तो वहाँ पुण्य या उसके फल ने उसका क्या हित किया ? और इसके विपरीत कोई जीव पाप करके नरक में गया, वहाँ असंख्य वर्ष तक नरक की भयंकर प्रतिकूलता के मध्य भी, उससे भिन्न चैतन्य का भान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया, तो वहाँ उस प्रतिकूल संयोग ने उसका क्या बिगाड़ा, संयोग तो आत्मा से भिन्न है। भाई ! वह तो चैतन्य को कभी स्पर्श ही नहीं करता।

अरे ! नरक में प्रतिकूलता की क्या बात करें ? जहाँ शरीर में करोड़ों भयंकर रोग हैं, असंख्य वर्ष तक खाने को दाना और पीने को पानी की बूँद भी नहीं मिलती, शरीर के तिल-तिल जैसे खण्ड हो जाते हैं, नारकी एक दूसरे को पकड़कर बाँधते हैं, लोहे की कडाही में डालते हैं और ऊपर से मुँह बन्द करके घन मारते हैं, गरम लोहे के आभूषण पहनाते हैं, लोहा पिघलाकर मुँह में डालते हैं, तथापि ऐसी प्रतिकूलता के बीच में भी, जो कोई जीव उनमें सम्यग्दृष्टि होता है, वह जानता है कि अरे ! मेरे चैतन्य को यह संयोग छूते ही नहीं, इस प्रतिकूलता का प्रवेश मेरे चैतन्यभाव में है ही नहीं, मैं तो उससे भिन्न ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूँ तथा कोई जीव उससमय ही ऐसा भान प्रकट करके सम्यग्दर्शन भी प्राप्त कर लेते हैं। बाहर में शरीर तो कड़ाहे के अन्दर जल रहा है और उसी समय आत्मा अतीन्द्रिय शान्ति में मग्न है। देखो तो सही ! चैतन्यतत्त्व का स्वभाव उन प्रतिकूल संयोगों में रहकर भी उनसे भिन्न ही है।

उन प्रतिकूल संयोगों के समय भी, पूर्वभव में किन्हीं मुनिराज के पास से चैतन्य की बात सुनी हो और वे संस्कार जाग उठे कि अरे ! क्या ऐसे प्रतिकूल संयोग और दु:ख के वेदन में ही सदा रहने का आत्मा का स्वरूप होगा। अथवा अन्दर कोई शान्ति की वस्तु भी होगी। मुनिराज मुझसे कहते थे कि हे आत्मा ! तू तो आनन्दस्वरूप है – इसप्रकार स्मरण करके वह तुरन्त अन्दर उतर जाता है और आत्मा का अनुभव करे, सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, परम चैतन्य का स्वाद चख लेता है। वहाँ नरक के संयोग



के बीच में पड़ा-पड़ा भी, चैतन्य के आनन्द का वेदन करता है। संयोग में तो शरीर पड़ा है, आत्मा तो उस समय भी असंयोगी चैतन्यभाव में झूल रहा है और परम सुख वेद रहा है। अरे ! एक बार संयोग से भिन्न अपने आत्मा की दृष्टि तो कर। अनन्त परद्रव्य और परभावों से भिन्न टिके रहने की अपूर्वशक्ति उस दृष्टि में भरी है, तीनों लोक खलबला उठे तो भी वह अपने स्वरूप से चलित नहीं होती। स्वरूप दृष्टि होते ही चैतन्य की अपार दौलत प्रकट हो जाती है।

बाहर के प्रतिकूल संयोग तो आत्मा से बाह्य हैं, वे आत्मा में घुस नहीं गये हैं, पूर्व में किसी मुनि या ज्ञानी ने आत्मस्वरूप समझाया, तब उसकी महिमा नहीं जगी और पाप करके यहाँ नरक में जन्म लिया। अरे ! ऐसा दु:ख; परन्तु आत्मा को ऐसे दु:ख का वेदन सदा रहनेवाला नहीं है, अन्दर कोई न कोई छुटकारे का उपाय अवश्य होगा। अन्दर शान्ति का कोई स्थान अवश्य होगा। ऐसा विचारने पर आत्मा का स्वरूप लक्ष्य में लेकर अन्दर उतरकर वह नारकी जीव क्षणभर में सम्यग्दर्शन पा जाता है। स्वर्ग के मिथ्यादृष्टि देव को भी जो सुख नहीं, वैसा अपूर्व सुख वह अनुभव कर लेता है। संयोग तो संयोग में रहा और वेदन वेदन में रहा, अन्दर चैतन्य परिणति उस संयोग और संयोग की तरफ के वेदन से छूटकर, असंयोगी आनन्दमय तत्त्व में घुस गई है – ऐसी धर्मी की दशा है।

आत्मा स्वयं आनन्द है, प्रतिकूल संयोग भले खड़ा हो; परन्तु वह अरूपी आत्मा से भिन्न है, उसमें आत्मा मिल नहीं गया है। ऐसे आत्मा को लक्ष्य में ले तो कितनी शक्ति हो। संयोग के कारण अशान्ति नहीं है, बापू ! तू उसका लक्ष्य छोड़। लाख प्रतिकूलता हो तो भी उनसे पार आत्मा का ध्यान कर। यही लाख बात का सार है और यही शान्ति का उपाय है।

तू शरीरादि को अनुकूल रखने की जितनी चिन्ता करता है उतनी चिन्ता यदि आत्मा के हित के लिए करे तो अवश्य ही हित हो। शरीर की चिन्ता तो निरर्थक है, उसमें तेरा कुछ भी वश नहीं चल सकता। शरीर प्रतिकूल भले हो; किन्तु उससे भिन्न आत्मा की दृष्टि और उसकी शान्ति का वेदन उसी समय हो सकता है। शरीर की प्रतिकूलता उससे भिन्नता की दृष्टि करने से नहीं रोक सकती। अत: उसमें हर्ष-

विषाद मत करो। नित्य आत्मा का ध्यान करो। चाहे जैसा संयोग हो; परन्तु है तो वह पर में ही, वह आत्मा में है ही कहाँ ? आत्मा अपने परिणाम में उसी समय उससे भिन्न अन्तर-लक्ष्य कर सकता है कि मैं तो आनन्दमय हूँ, सिद्ध जैसा मेरा स्वभाव है, मेरे चैतन्य वेदन में दु:ख का अभाव है – इसप्रकार संयोग के समय संयोग से पार आत्मा का वेदन करे तो प्रतिकूल संयोग के मध्य भी अपूर्व शान्ति का वेदन रहता है।

देखा न! शत्रुंजय पर्वत पर ध्यान-लीन पाण्डवों का शरीर गरम लोहमय आभूषणों से दग्ध हो रहा था, फिर भी वे पाण्डव चैतन्य की अन्तर शान्ति में कैसे मग्न थे ? ऐसे मग्न थे कि उन्हें शरीर का लक्ष्य भी नहीं रहा और उसी शान्ति में मग्न रहकर आत्मकल्याण कर लिया। चैतन्य में कितनी अगाध शक्ति भरी है। उसका यह नमूना है तथा गजकुमार श्रीकृष्ण के छोटे भाई थे, जिनका शरीर अत्यन्त कोमल था, वह मुनि होकर ध्यान में खड़े थे, तब मस्तक तो अग्नि में भड़-भड़ सुलग रहा था; किन्तु वह तो अन्दर चैतन्य की शान्तिरूपी बर्फ में मग्न थे, वहाँ अग्नि का कोई भी दु:ख उन्हें नहीं था, उस अग्नि की ज्वाला में यह शक्ति थी ही कहाँ कि वह चैतन्य की शान्ति को छू भी सके। देखो तो सही, यह चैतन्यतत्त्व ! बाहर की प्रतिकूलता इस चैतन्यतत्त्व में है ही कहाँ ? उसी तरह समवशरणादि अनुकूल संयोग हों तो उनसे आत्मा को क्या लाभ ? उनका भी लक्ष्य छोड़कर स्वयं अपने ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की संभाल नहीं करते वे जीव तीर्थंकर भगवान के समक्ष रहकर भी मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं। अरे भाई ! बाहर की अनुकूल वस्तु आत्मा को क्या करे ? ज्ञानानन्द का कोष तो अपनी आत्मा में अन्दर ही है, उसको लक्ष्य में न ले तो समवशरण में भले ही बना रहे; किन्तु वह मिथ्यादृष्टि-दु:खी ही है। यद्यपि समवशरण में बाहर का कोई दु:ख नहीं है तथापि वह जीव अन्दर अपने मिथ्यातम से दु:खी ही है। जिसने आत्मा में दृष्टि की, उसने सातवें नरक के अत्यन्त असहनीय कष्टदायक बाह्यसंयोगों में रहकर भी सम्यग्दर्शन उत्पन्न करके आत्मा के अतीन्द्रिय सुख का वेदन कर लिया और जन्म-मरण के नाश का अवसर प्राप्त कर लिया। **(क्रमश:)**



**नियमसार प्रवचन –**

## आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 73वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

**पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा।**
**धीरा गुणगंभीरा आयरिया एरिसा होंति।।७३।।**

( हरिगीत )

**पंचेन्द्रिय गजमदगलन हरि मुनि धीर गुण गंभीर अर।**
**परिपूर्ण पंचाचार से आचार्य होते हैं सदा।। ७३।।**

पंचाचारों से परिपूर्ण, पंचेन्द्रियरूपी हाथी के मद का दलन करने वाले, धीर और गुणों से गंभीर मुनिराज आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

**(गतांक से आगे....)**

आचार्य भगवान समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्तकर्त्ता होने से धीर और गुणगम्भीर हैं। बाहर में घोर उपसर्ग आ पड़े, प्रतिकूलता के प्रसंग आ जावें तथापि ज्ञानानन्दस्वरूप के परमशान्तरस में लीन रहने के कारण आचार्य अत्यन्त धीर होते हैं। देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत और अचेतनकृत के भेद से उपसर्ग चार प्रकार के होते हैं। गुण से गंभीर हैं अर्थात् जिनके गुणों को सामान्यजनों के द्वारा परखना कठिन हैं – ऐसे आचार्य भगवान हैं। यह आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और स्वरूपरमणता में झूलते भावलिंगी आचार्य की बात है। यह व्यवहारचारित्र का अधिकार है इसलिए आत्मा के भान रहित मात्र बाह्य आचरण वाले हैं – ऐसा नहीं समझना चाहिए। जिसको शरीर-मन-वाणी तथा पुण्य-पाप के विकार से भिन्न ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा का यथार्थ ज्ञान प्रकट हुआ है, जो ज्ञान-दर्शन आदि पाँच आचारों से परिपूर्ण हैं, जो पंचेन्द्रियों को जीतने में निपुण हैं और जो धीर तथा गुणगंभीर हैं – वे आचार्यभगवन्त हैं।

इसीप्रकार (आचार्यवर) श्री वादिराजदेव ने कहा है कि –

( शार्दूलविक्रीडित )

**''पंचाचारपरान्नकिंचनपतीन्नष्टकषायाश्रमान्**
**चंचज्ज्ञानबलप्रपंचितमहापंचास्तिकायस्थितीन्।**
**स्फाराचंचलयोगचंचुरधियः सूरीनुदंचद्गुणान्**
**अंचामो भवदुःखसंचयभिदे भक्तिक्रियाचंचवः।।''**

( हरिगीत )

**अकिंचनता के धनी परवीण पंचाचार में।**
**अर जितकषायी निपुणबुद्धि हैं समाधि योग में।।**
**ज्ञानबल से बताते जो पंच अस्तिकाय हम।**
**उन्हें पूजें भवदुखों से मुक्त होने के लिए।। ३५।।**

जो पंचाचारपरायण हैं, जो अकिंचनता के स्वामी हैं, जिन्होंने कषायस्थानों को नष्ट किया है, परिणमित ज्ञान के बल द्वारा जो महा पंचास्तिकाय की स्थिति को समझाते हैं, विपुल अचंचल योग में (-विकसित स्थिर समाधि में) जिनकी बुद्धि निपुण है और जिनके गुण उछलते हैं, उन आचार्यों को भक्तिक्रिया में कुशल ऐसे हम भवदुःखराशि को भेदने के लिये पूजते हैं।''

कैसे हैं आचार्य ? जो पंचाचारपरायण हैं, जिनके अन्तर में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप और वीर्य इत्यादि स्वाभाविक दशायें प्रकट हुई हैं और जो स्वरूपलीनता में तत्पर हैं, जो अकिंचनता के स्वामी हैं, जिनके पास शरीर के अतिरिक्त अन्य कुछ होता नहीं है; क्योंकि वह छोड़ा नहीं जाता, निर्बलता के कारण अन्दर में राग का विकल्प उठने पर भी, वे उसके स्वामी नहीं होते। 'मैं परमानन्द ज्ञाता हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य किंचित् भी मेरा नहीं' है – ऐसे अकिंचनत्व के जो स्वामी होते हैं, वे आचार्य कहलाते हैं।

यह **'णमो आयरियाणं'** का अर्थ चल रहा है।

आचार्यदेव ने कषाय स्थानों को नष्ट किया है। पुण्य-पाप के विकारी भावों के भेदों को स्वभाव के अवलम्बन द्वारा नाश किया है। आचार्य परिणमते ज्ञान के बल से महापंचास्तिकाय की स्थिति को समझाते हैं। जिनको अन्तरङ्ग आत्मबल विकसित होकर ज्ञानस्वभाव का परिणमन अर्थात् रागरहित निर्विकल्पदशा परिणम रही है – वीतरागी पर्याय परिणम रही है – ऐसे आचार्य यहाँ समझाते हैं। आचार्यदेव आत्मा के भान बिना मात्र धारणा से यह बात नहीं समझाते हैं कि – शास्त्र में ऐसा



लिखा है, भगवान ने ऐसा कहा है; किन्तु अपनी आत्मा में वीतरागी परिणति और परिणमते ज्ञान के बल से पंचास्तिकाय का यथार्थ स्वरूप समझाते हैं। अन्दर स्वभाव के आश्रय से ज्ञान की नई-नई व्यक्ति अर्थात् प्रकटता के द्वारा अनन्त जीवद्रव्य, अनन्तान्त पुद्गलद्रव्य है, एक धर्मद्रव्य है; एक अधर्मद्रव्य है, एक सर्वव्यापी अखण्ड आकाशद्रव्य है और असंख्य कालाणु द्रव्य इत्यादि कालसहित पंचास्तिकाय का स्वरूप बराबर समझाते हैं। जैसा पदार्थ है, वैसा ज्ञान अपने कारण से परिणमा है – ज्ञेय के कारण से नहीं। नया-नया ज्ञान अन्तरपरिणमित होकर उछलता है और फिर अपने वर्तमान निर्मल परिणमन द्वारा आचार्य समझाते हैं, अकेली धारणा से नहीं। स्वयं अन्दर विकास प्राप्त हुआ है, उससे समझाते हैं।

विपुल अचंचल योग में जिनकी बुद्धि निपुण है – ऐसे आचार्य हैं। आचार्य विकसित स्थिर समाधि में – ज्ञानानन्दस्वभाव की अनाकुल शान्ति में निपुण हैं। जो ज्ञानदर्शन-आनन्द आदि अनन्तगुण का सागर है, ऐसे परमपारिणामिकभाव में – त्रिकाली निरपेक्ष आत्मद्रव्य में एकाग्रतारूप योग में आचार्य की बुद्धि निपुण है – कुशल है। जो चैतन्यज्ञायक द्रव्यस्वभाव का भान करके अन्दर से खिल गये हैं – ऐसे समाधि में निपुण मुनिवर को आचार्य कहते हैं।

जिनमें गुण उछलते हैं – ऐसे आचार्य हैं। जिसप्रकार समुद्र में बाढ़ आने पर लहरें उछलने लगती हैं, उसीप्रकार आचार्य की पर्याय में गुण उछलते हैं। यहाँ गुण का अर्थ स्वाभाविक परिणमन समझना। एक समय में ज्ञान-दर्शन-सुख आदि अनन्त गुणों की पर्यायें उछलती हैं, समय-समय पर्याय में वृद्धि होती है, वैसी की वैसी नहीं रहती। आचार्यदेव की वीतराग अवस्था ऐसी प्रकटी है कि मानों झटपट केवलज्ञान प्रकट करें; तथापि जानते हैं कि पंचमकाल में जन्म लिया है, इस समय हमारे वीर्य की निर्बलता से केवलज्ञान लेने का पुरुषार्थ नहीं है; फिर भी स्वरूपमस्त दशा ऐसी है कि मानों कभी बाहर निकलेंगे ही नहीं, अन्दर में लीन होकर शीघ्र केवलज्ञान लेंगे – ऐसा उनका पुरुषार्थ है।

**प्रश्न –** आचार्यपद की क्या विशेषता है?

**उत्तर –** आचार्यपद में गुण की पर्यायें विशेष विकसित हैं। यद्यपि सामान्य आचरण तो सभी मुनियों का समान होता है, किन्तु आचार्य के ज्ञान के क्षयोपशम की विशेषता, विचक्षणता, संघ के नायक होने की कुशलता, पंचाचार आचरण कराने में निपुणता तथा दीक्षा-शिक्षा देना आदि उनकी विशेषताएँ हैं।

ऐसे आचार्यों को भक्तिक्रिया में कुशल भक्त हम अपनी भवदुःखराशि को भेदने के लिए पूजते हैं। आचार्यों को यद्यपि शुभविकल्प उठता है, वह भी बन्ध का कारण है, तथापि निर्बल भूमिका में वह आए बिना रहता नहीं है। मुनिराज जानते हैं कि वह राग भी कल्याणस्वरूप या कल्याण का कारण नहीं है। वादिराज स्वयं आचार्य हैं, उन्होंने भव का भाव अधिकांश तो छेद दिया है, फिर भी यहाँ वे आचार्य की विशेष स्तुति करते हैं।

( हरिणी )

**सकलकरणग्रामालंबाद्विमुक्तमनाकुलं**
**स्वहितनिरतं शुद्धं निर्वाणकारणकारणम् ।**
**शमदमयमावासं मैत्रीदयादममंदिरं**
**निरुपमिदं वंद्यं श्रीचन्द्रकीर्तिमुनेर्मनः ।।१०४।।**

( हरिगीत )

**सब इन्द्रियों के सहारे से रहित आकुलता रहित।**
**स्वहित में नित हैं निरत मैत्री दया दम के धनी।।**
**मुक्ति के जो हेतु शम, दम, नियम के आवास जो।**
**उन चन्द्रकीर्ति महामुनि का हृदय वंदन योग्य है।।१०४।।**

सकल इन्द्रिय समूह के आलम्बन रहित, अनाकुल, स्वहित में लीन, शुद्ध, निर्वाण के कारण का कारण **(-मुक्ति के कारणभूत शुक्लध्यान का कारण),** शम-दम-यम का निवास स्थान, मैत्री-दया-दम का मन्दिर **(घर)** – ऐसा यह श्रीचन्द्र कीर्तिमुनि का निरुपम मन **(चैतन्यपरिणमन)** वंद्य है।

पद्मप्रभमलधारिदेव निर्ग्रन्थ मुनि थे, स्वयं आचार्य नहीं थे, वे अपने गुरु श्रीचन्द्रकीर्ति मुनि को वन्दन करते हैं। कैसे हैं वे चन्द्रकीर्ति मुनि, तथा कैसा है उनका चैतन्यपरिणमन? सकल इन्द्रियसमूह के आलम्बन रहित उनका चैतन्यपरिणमन है। ज्ञानानन्द त्रिकाली परमभावना-स्वभाव के आश्रय से ज्ञानपर्याय ऐसी विकसित हुई है कि उन्हें इन्द्रियों का, बाह्य पदार्थों का, अथवा पुण्य-पाप के विकल्पों का आलम्बन नहीं है। पुनः कैसा है वह चैतन्यपरिणमन? उस चैतन्यपरिणमन में अर्थात् आत्मा की निर्मल शुद्धपर्याय में आकुलता नहीं है, तथा वह ज्ञानानन्ददशा-स्वहित में लीन है।



पद्मप्रभमुनिराज लगभग ७०० वर्ष पहले हो गए हैं। उस समय कोई चन्द्रकीर्ति मुनि होंगे, उन्हें टीकाकार मुनिराज ने वन्दन किया है। चैतन्यपरिणमन निर्वाण के कारण का कारण अर्थात् मुक्ति के कारणभूत शुक्लध्यान का कारण है। नीचे की भूमिका में जो शुद्धता है वह शुक्लध्यान का कारण है और शुक्लध्यान मोक्ष का कारण है, इस प्रकार क्रम है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वभावी है, शरीर-मन-वाणी पर है और पुण्य-पाप के भाव विकार हैं – इसप्रकार आत्मा का भान करके स्वरूप में स्थिरता द्वारा परिणति निर्मल हुई – वही मोक्षमार्ग है। वह मोक्षमार्गरूप चैतन्यपरिणमन शुक्लध्यान का कारण है। कोई पुण्य, राग या विकल्प शुक्लध्यान का कारण नहीं है; क्योंकि शास्त्र में जितना शुभभावरूप-विकल्परूप- व्यवहार कहा है वह सब बन्ध का कारण कहा है, शुक्लध्यान या मोक्ष का कारण नहीं।

उपमारहित-निरुपम – ऐसा वह चन्द्रकीर्ति मुनि का मन चैतन्य-परिणमन, उपशम-भाव, राग-विकल्परहित आत्मा की शान्ति आदि का निवास स्थान है। पंचमहाव्रतादि के विकल्प शान्ति के स्थान नहीं हैं। दम अर्थात् इन्द्रियों का दमन। यद्यपि इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, किन्तु आत्मा के भानसहित आत्मा में लीनता बढ़ने पर इन्द्रियों की ओर का राग टलना उनकी तरफ का लक्ष्य छूटना, वह दम है। उस दम का निवास स्थान आत्मा का वीतरागी परिणमन है। आत्मा की वर्तमान पर्याय को पुण्य और राग की तरफ न झुकने देना और उसे आत्मा में लगाने को जितेन्द्रिय कहते हैं। वीतरागज्ञान प्रकट हुआ, वह इन्द्रियों के दम का स्थान है। अरे! आत्मभान बिना चाहें जितने काल 'सात्त्विक भोजन लें, तो भी वास्तव में इन्द्रियों का दमन नहीं होता इन्द्रियाँ शान्त नहीं होतीं।

वीतरागी चैतन्यपरिणमन यम का अर्थात् वीतरागी निर्विकल्प संयम का निवास स्थान है। किसी प्राणी के प्रति वैर की वृत्ति न हो, वह मैत्री है। वीतरागी आत्म-परिणति, वह मैत्री का मन्दिर है। दया अर्थात् आत्मा की दया। मैं परिपूर्ण ज्ञानानन्द परमात्मा हूँ, मुझमें राग का अंश भी नहीं, शरीर-मन-वाणी इत्यादि तो मुझसे भिन्न ही हैं' – यह आत्मा की सच्ची समझरूप दया आत्मा की शुद्धदशा में रहती हैं। ऐसी सहज निर्विकल्प-दशावाले श्री चन्द्रकीर्ति मुनि का मन हमारे द्वारा वंद्य है। **(क्रमशः)**

# ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

**प्रश्न :** परजीवों का जीवन-मरण उनके अपने कारण से होता है, मैं उनका कुछ नहीं कर सकता, मैं तो मात्र जाननेवाला हूँ – ऐसी श्रद्धा रखने से तो जीव के परिणाम निष्ठुर हो जायेंगे ?

**उत्तर :** भाई ! वस्तु-स्वभाव के अनुसार श्रद्धा करने का फल तो वीतरागता है। चैतन्यस्वभाव की श्रद्धापूर्वक जो दयादि के परिणाम छोड़कर मात्र ज्ञाता-दृष्टा रहेगा तो वीतराग हो जायेगा, फिर अज्ञानी भले ही उसे निष्ठुर कहे। संसार में भी युवा पुत्र मर जाने पर पिता उसके साथ मर नहीं जाता, तो उसे निष्ठुर क्यों नहीं कहते ? यह निष्ठुरता नहीं है, यह तो उसप्रकार का विवेक है।

जगत के जीव भी विकार के लक्ष से निष्ठुर हो जाते है। घर में बीस वर्ष की युवा बहु विधवा हो जाय और साठ वर्ष का श्वसुर विषयों में लिन हो रहा हो; देखो तो सही ! उसके परिणाम कितने निष्ठुर है। अज्ञानी कषाय के लक्ष से निष्ठुर होते है, जबकि ज्ञानी जीव अपने चैतन्यस्वभाव के लक्ष से अपने में एकाग्र होकर विकारीभावों से रहित होकर सिद्ध हो जाते हैं, वीतरागी कहे जाते हैं। जो जीव विकारीभाव करते हैं; वे पर के लिये नहीं करते, किन्तु स्वयं में उस जाति की कषाय होने से वह विकार होता है और जो उसे करनेयोग्य मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानी जीव अपना वीतरागस्वभाव साधने के लिये पर की चिन्ता नहीं करते, यह निष्ठुरता नहीं है, यह तो स्वभावदशा है – वीतरागदशा है।

**प्रश्न :** यदि वाणी का कर्त्ता आत्मा नहीं है, तो 'मुनि को सत्य वचन बोलना चाहिये' – ऐसा क्यों कहा जाता है ?

**उत्तर :** सम्यग्ज्ञानपूर्वक सत्य बोलने का भाव हो तब जो वाणी निकलती है, वह सत्य ही होती है – ऐसा सुमेल बतलाने के लिये निमित्त से कहते हैं कि मुनि को सत्य बोलना चाहिये, उसमें ऐसा आशय है कि मुनिराज को आत्मस्वरूप में स्थिर रहकर वाणी की तरफ विकल्प ही नहीं होने देना चाहिए और यदि हो तो असत्य वचन की तरफ का अशुभराग तो होने ही नहीं देना चाहिये – इसका आशय ऐसा कदापि नहीं



है कि आत्मा जड़ वाणी का कर्त्ता है।

**प्रश्न :** यदि मुनियों के वाणी का कर्तृत्व नहीं है, तो वे उपदेश क्यों देते हैं ?

**उत्तर :** अरे भाई ! मुनिराज उपदेश देते ही नहीं, वे तो उपदेश को जानते हैं। भगवान कहते हैं, जिनवर कहते हैं – ऐसा शास्त्र में कथन आता है; किन्तु भगवान कहते ही नहीं, भगवान तो वाणी को जानते हैं, वास्तव में तो वे 'स्व' को ही जानते हैं। स्व-पर जानना सहज है, पर की अपेक्षा ही नहीं, जानने का स्वभाव ही है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं अपने निजवैभव से कहूँगा। तुम प्रमाण करना। अरे भगवान ! वाणी तुम्हारी नहीं है न ? वाणी से ज्ञान भी नहीं होता। भाई! आहाहा ! गजब बात है, वस्तु का स्वरूप ही अद्भुत है। निमित्त-नैमित्तिक के कथन एक सर्वज्ञ के मार्ग में ही हैं, अन्यत्र नहीं।

**प्रश्न :** आप कहते हैं कि शरीर की पर्याय जिसकाल में जो होनी होगी वह होगी, उसमें वैद्य भी क्या करे ? यदि वैद्य रोग मिटा नहीं सकता तो उसे धन्धा छोड़ देना चाहिये।

**उत्तर :** दृष्टि अन्तर्मुख रखनी चाहिये। राग आवे, लोभ आवे, किन्तु वजन उसके ऊपर नहीं जाना चाहिये। वजन तो अन्दर का ही होना चाहिये।

**प्रश्न :** दृष्टि इसतरफ रखकर धन्धा करे न ?

**उत्तर :** धन्धा करे क्या ? करना – ऐसा नहीं; राग और लोभ का भाव आवे उसे मात्र जानना।

**प्रश्न :** मानना कुछ और करना कुछ ?

**उत्तर :** होना होता है, वही होता है – ऐसा मानना।

**प्रश्न :** एक परमाणु दूसरे परमाणु को छूता नहीं, तो दूध की कड़ाही में एक बूँद विष मिला देने पर सारा दूध विषरूप हो जाता है – उसका क्या कारण है ?

**उत्तर :** प्रत्येक परमाणु अपना कारण-कार्य है। दूध के परमाणु विषरूप स्वयं से परिणमित हुए है; विष के रजकण से नहीं। आहाहा ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं – यह बात वीतराग की माने कौन ?

**प्रश्न :** क्या जीव का अजीव के साथ कारण-कार्य भाव सिद्ध नहीं होता ?

**उत्तर :** नहीं होता। प्रत्येक द्रव्य का परिणाम अपने से होता है, उसे दूसरा द्रव्य नहीं कर सकता। जीव अपने परिणाम से उत्पन्न होता है, उसे अजीव के साथ कारण-कार्य भाव सिद्ध नहीं होता। होंठ चलते हैं, वाणी निकलती है, उनका कर्त्ता

जीव है – ऐसा सिद्ध नहीं होता। दाल, भात, शाक होता है – उसे जीव नहीं कर सकता। रोटी का टुकड़ा होता है, उसे जीव नहीं कर सकता। शरीर के अवयवों का हलन-चलन होता है, उसका कर्त्ता जीव है – ऐसा सिद्ध नहीं होता। हाँ, उन अजीव के सभी कार्यों का कर्त्ता पुद्गल द्रव्य है – ऐसा सिद्ध होता है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! वीतरागकथित वस्तु को समझे तो संसार से पार हो जाय – ऐसी बात है।

**प्रश्न :** एक जीव दूसरे जीव को दु:खी नहीं कर सकता – यह ठीक है; परन्तु असाताकर्म का उदय तो दु:ख का कारण है न ?

**उत्तर :** ऐसा भी नहीं है। असाता का उदय तो बाह्य प्रतिकूल संयोग का सम्पादन करता है और उस संयोग के काल में दुख की कल्पना तो जीव स्वयं मोहभाव से करे तो ही उसे दुख होता है; अत: असाता कर्म के उदय से दुख नहीं होता; किन्तु मोह भाव से ही होता है। असाता के उदय के समय भी यदि स्वयं मोह से दुख की कल्पना न करे और आत्मा को पहिचानकर उसके अनुभव में रहे तो दुख नहीं होता। बाह्य संयोगों को बदला नहीं जा सकता; परन्तु संयोग की ओर से दृष्टि हटाकर वेदन को बदला जा सकता है।

**प्रश्न :** पर से अपना कार्य नहीं होता – ऐसा निर्णय करने से क्या लाभ ?

**उत्तर :** पर से अपना कार्य होता ही नहीं, ऐसा निर्णय करते ही परावलम्बी श्रद्धा तो छुट ही जाती है, इतना तो लाभ है ही; तत्पश्चात् स्व-तरफ बढ़ना रह जाता है, तथा स्व के आश्रय का पुरुषार्थ करते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है।

**प्रश्न :** राग को जीव करता है, कर्म करता है और जीव तथा कर्म दोनों मिलकर करते हैं – ऐसा कहने में आता है। तो इन तीनों में सही क्या समझना चाहिये ?

**उत्तर :** राग तो जीव के अपराध से होता है, इसलिये जीव राग का कर्त्ता है, लेकिन जीवस्वभाव में विकार होने का कोई गुण नहीं है; इसलिये द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा राग का कर्त्ता कर्म है। कर्म व्यापक होकर राग को करता है – ऐसा कहने में आता है और प्रमाण का ज्ञान कराना हो तो 'जीव और कर्म दोनों मिलकर राग को करते हैं' – ऐसा कहने में आता है। जैसे 'पुत्र' माता और पिता दोनों का कहा जाता है।

भगवान आत्मा ज्ञायकज्योति है, वह विकार का कर्त्ता नहीं। विकार का कर्त्ता मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग – ये चार प्रकार के कर्म और उनके १३ प्रकार के प्रत्यय हैं। आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, वह विकार का कर्त्ता नहीं।

समाचार दर्शन -

## महावीर निर्वाणोत्सव संपन्न

**देवलाली-नासिक (महा.) :** यहाँ कहान नगर में दिनांक 27 से 31 अक्टूबर 2016 तक महावीर निर्वाणोत्सव के अवसर पर आध्यात्मिक व्याख्यानमाला एवं महावीर पंचकल्याणक विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा महावीर निर्वाणोत्सव एवं प्रवचनसार पर प्रवचनों का लाभ मिला। इसके अतिरिक्त पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, ब्र.हेमचंदजी 'हेम' देवलाली, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित अनिलकुमारजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित दिनेशभाई व डॉ. उज्ज्वला शहा मुम्बई के व्याख्यानों का भी लाभ मिला।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित अभयजी के निर्देशन में पण्डित अनिलजी धवल व पण्डित दीपकजी धवल भोपाल द्वारा संपन्न हुये।

## ऑन लाइन संगोष्ठी : अभिनव प्रयोग

सीमंधर जिनालय भीलवाड़ा की ओर से रविवार दिनांक 20 नवम्बर 2016 को ऑन लाइन संगोष्ठी अन्तरराष्ट्रीय आध्यात्मिक प्रवचनकार डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई, जिसका विषय था 'पाके नर तन क्या खोया क्या पाया'।

इस अवसर पर मुख्य वक्ताओं के अन्तर्गत डॉ. सुदीपजी दिल्ली, डॉ. अशोकजी गोयल दिल्ली, श्री अखिलजी बंसल जयपुर, डॉ. जिनेन्द्रजी उदयपुर, श्री अजितजी बड़ौदा, श्रीमती सुरभि खंडवा, श्री भारतभूषणजी अलवर, श्री अभिलाषजी शास्त्री कोटा, मंगलार्थी सुलभ झांसी, महावीरजी सुकुमालजी, श्रीमती सरिता-पवनजी चौधरी भीलवाड़ा आदि 27 विद्वानों और साधर्मी भाई-बहनों ने भाग लिया।

नरक निगोद से निकलकर नर तन मिलना दुर्लभ है। सभी प्रकार का सुयोग मिलने पर भव के अभाव का ही पुरुषार्थ करना चाहिये। बुद्धिपूर्वक सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के सान्निध्य में रहकर तत्त्वाभ्यास कर तत्त्वनिर्णय ही करने योग्य है। त्रस पर्याय का यह अन्तिम भव हुआ तो फिर यह नर तन मिलना भी मुश्किल है। बारम्बार इसका चिन्तन करना चाहिये।

गोष्ठी का मंगलाचरण मंगलार्थी चिद्रूप मौ और भव्या चौधरी भीलवाड़ा ने किया। संपूर्ण कार्यक्रम का संयोजन डॉ. अरविन्दकुमारजी जैन (प्रिंसिपल), भीलवाड़ा ने एवं संचालन पण्डित गणतंत्रजी शास्त्री आगरा ने किया।

## आवश्यक सूचना

**जिनवाणी चैनल पर हर रविवार प्रात: 11 से 12 बजे तक ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना द्वारा सूरत में हुए प्रवचनों का प्रसारण किया जायेगा। सभी साधर्मीजन लाभ लेवें।**

# डॉ. भारिल्ल पर एक और पीएच.डी.

शेगुणसी (कर्नाटक) के सरकारी प्रौढ विद्यालय के हिन्दी शिक्षक श्री राजेन्द्रजी सांगावे को मद्रास विश्वविद्यालय से **'डॉ. हुकमचंद भारिल्ल की गद्य विधाओं में जैनदर्शन'** विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। डॉ. सांगावे ने अपना यह शोध-प्रबंध डॉ. डी.बी. पांड्रे (प्राचार्य-पी.एम.कॉलेज, रायबाग) के निर्देशन में पूर्ण किया।

इस उपलब्धि हेतु जैनपथप्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

ज्ञातव्य है कि इसके पूर्व भी डॉ. भारिल्ल के व्यक्तित्व कर्तृत्व एवं साहित्य पर अनेक शोधकार्य किये जा चुके हैं।

# बाल संस्कार शिविर संपन्न

**पिड़ावा (राज.) :** यहाँ श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला द्वारा दिनांक 22 से 30 अक्टूबर तक बाल संस्कार एवं पण्डित टोडरमल स्मारक स्वर्ण जयंती शिविर बड़े ही हर्षोल्लासपूर्वक मनाया गया।

इस अवसर पर ब्र. नन्हे भैया एवं स्थानीय शास्त्री विद्वानों का सान्निध्य प्राप्त हुआ।

शिविर में प्रतिदिन पाठशाला के बच्चों द्वारा सामूहिक पूजन एवं जिनेन्द्र भक्ति की गई तथा दीपावली के अवसर पर पटाखे नहीं फोड़ने का नियम लिया गया। इसके अतिरिक्त शिविर में बच्चों को पण्डित टोडरमल स्मारक के बारे में जानकारी दी गई, जिससे प्रभावित होकर बच्चों ने 10वीं कक्षा के बाद टोडरमल स्मारक, ध्रुवधाम एवं मुमुक्षु आश्रम कोटा में पढने की भावना व्यक्त की। **– विवेक शास्त्री, पिड़ावा**

# शोक समाचार

**(1) अलवर निवासी श्री हजारीलालजी (बडेरवाले)** का 106 वर्ष की आयु में पंचपरमेष्ठी भगवान के चिंतनपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान हेतु 1100-1100/- रुपये प्राप्त हुये। **– अनंतकुमार नवीन कुमार जैन**

**(2) फिरोजाबाद (उ.प्र.) निवासी श्री पांडे ऋषभकुमारजी जैन** का दिनांक 3 नवम्बर 2016 को 73 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। ज्ञातव्य है कि आप टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक पण्डित सोनूजी शास्त्री सोनगढ के पिताजी थे।

दिवंगत आत्मायें चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।



# गुरुदेवश्री की पुण्य तिथि मनाई

**(1) जयपुर (राज.) :** यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 20 नवम्बर को गुरुदेवश्री की पुण्य तिथि के अवसर पर गुरुदेवश्री के जीवन पर टोडरमल महाविद्यालय के छात्रों द्वारा गोष्ठी का आयोजन किया गया।

गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित प्रमोदजी शास्त्री शाहगढ ने की। मुख्य अतिथि के रूप में पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, पण्डित पीयूषजी शास्त्री आदि विद्वत्गण भी उपस्थित थे।

इस अवसर पर 10 वक्तओं ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया, जिसमें से उपाध्याय वर्ग के अन्तर्गत पल त्रिवेदी (उपाध्याय कनिष्ठ) एवं शास्त्री वर्ग के अन्तर्गत रमन जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष) सर्वश्रेष्ठ वक्ता रहे। गोष्ठी का संचालन विशाल जैन एवं शुभम जैन ने किया।

इसके अतिरिक्त समयसार की 17-18 गाथा पर गुरुदेवश्री के वीडियो प्रवचन एवं उनकी जीवनयात्रा का वीडियो भी सभी छात्रों को दिखाया गया।

**(2) भीलवाड़ा (राज.) :** यहाँ सीमंधर जिनालय में पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का स्मृति दिवस मनाया गया। प्रात: स्वर्णपुरी (सोनगढ) क्षेत्र की पूजन सामूहिकरूप से की गई। तत्पश्चात् डॉ. अरविन्दकुमारजी जैन के सान्निध्य में सभा आयोजित की गई।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन के उपरान्त श्री महावीरजी चौधरी, श्री नेमीचन्दजी बघेरवाल, श्री प्रकाशचंदजी पाटनी, श्री भरतजी बंडी, श्री सुकुमालजी चौधरी, श्री पवनजी चौधरी, श्रीमती नरेन्द्राजी बंडी एवं श्रीमती सरिताजी चौधरी ने अपने विचार व्यक्त किये। इसके अन्तर्गत सभी वक्ताओं ने बताया कि भगवान आत्मा, पूर्णता के लक्ष्य से पूर्णता की प्राप्ति, उपादान से कार्यसिद्धि, क्रमबद्धपर्याय, शुभ भावों की हेयता, सभी द्रव्यों की स्वतंत्रता आदि विषयों की प्रसिद्धि गुरुदेवश्री ने सारे जीवनपर्यन्त की।

अन्त में अगली पीढी में संस्कार देने के संकल्प के साथ सभा विसर्जित हुई।

**आगामी कार्यक्रम...**

**YOUTH CONVENTION**

4th International Youth Convention. To be held on 30 December 2016 to 1st January 2017 at Shree Kanji Swami Smarak Trust Deolali - Nasik (Mh.). By **Dr. Sanjeevji Godha on Trilok Varnan**
Pujan Vidhan by Pt. Vivek ji Shastri, Indore
Age group 15-45. Registration on **www.mumukshu.org.**
**For further enquiries :** Pt. Devang Gala - +91-9967424231

# अष्टाह्निका पर्व संपन्न

**(1) देवलाली-नासिक (महा.) :** यहाँ अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट के तत्त्वावधान में श्रीमती सुशीलाबेन नवीनभाई तेजानी परिवार अमेरिका के विशेष सहयोग एवं मुमुक्षु ऑफ नॉर्थ अमेरिका **(MONA)** के आयोजकत्व में श्री प्रवचनसार मंडल विधान एवं सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर स्थानीय विद्वान पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली एवं ब्र. हेमचंदजी 'हेम' के अतिरिक्त युवा विद्वान डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित चेतनभाई शाह राजकोट एवं पण्डित प्रकाशभाई शाह कोलकाता आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला। सभी विद्वानों द्वारा समयसार ग्रन्थाधिराज के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार पर मार्मिक प्रवचन हुये। सभी ने मिलकर 8 दिनों में इस सम्पूर्ण अधिकार का मर्म बताया ।

ज्ञातव्य है कि 'मोना' द्वारा यह शिविर आदरणीय जुगलकिशोरजी 'युगल' की स्मृति में आयोजित किया गया था, जिसमें उनके द्वारा किये गये तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में योगदान हेतु को दो दिन विशेष रूप से ब्र.निलिमा जैन कोटा द्वारा बताया गया।

विधि विधान के समस्त कार्य पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री एवं पण्डित दीपकजी धवल भोपाल द्वारा संपन्न कराये गये। **– अमृतभाई**

**(2) मुम्बई :** यहाँ अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर विभिन्न उपनगरों के अन्तर्गत **सीमंधर जिनालय** में पण्डित सुबोधजी सिवनी, **मलाड (ईस्ट)** में पण्डित अश्विनभाई शाह, **भायंदर** में पण्डित निर्मलजी जैन सागर, **दादर** में ब्र. कैलाशचंदजी 'अचल', **मलाड (वेस्ट)** में पण्डित विपिनजी जैन मुम्बई, **बोरीवली** में पण्डित अनिलभाई शाह एवं **दहीसर** में पण्डित राजेशभाई शेठ द्वारा प्रवचनों का लाभ मिला।

**(3) अजमेर (राज.) :** यहाँ पर्व के अवसर पर पुरानी मंडी स्थित श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के श्री सीमंधर जिनालय में दिनांक 7 से 14 नवम्बर तक राजमलजी पवैया द्वारा रचित श्री पंचमेरु एवं नंदीश्वर विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित मनोजकुमारजी जैन जबलपुर द्वारा समयसार एवं परमार्थवचनिका पर प्रवचनों का लाभ मिला। विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित अंकुरजी शास्त्री मैनपुरी द्वारा श्रीमती सरोज पाण्ड्या एवं अर्चनाजी जैन के सहयोग से संपन्न हुये।**– प्रकाशचंद पाण्ड्या**

**पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –**
**वेबसाईट – www.vitragvani.com**
**संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई**
**Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com**

विश्व की सबसे बड़ी 37 इंच की स्फटिक की 280 किलो की सीमंधर भगवान की प्रतिमा विराजमान होगी। (भेंटकर्त्ता एवं विराजमानकर्त्ता अपेक्षित हैं)

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2015-17*

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन में 1143 प्रतिमाएँ विराजमान होंगी।

सभी प्रतिमाएँ ढाईद्वीप में आ चुकी हैं।

सम्पादक :
**डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
**डॉ. संजीवकुमार गोधा**
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
**ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.**
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**